पुरातात्विक और इतिहास की दृष्टि से सांभर

रिंकू जैन

सांभर प्राचीन काल से वर्तमान तक एक प्रसिद्ध नगर रहा है यहॉ पर स्थित सांभर झील जो विश्व विख्यात प्राप्त नमक की झील है इसकी सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, कलात्मक एवं साहित्यिक धरोहर दीर्घ अवधि से सुसम्पन्न एवं संवर्धित होती आयी है। इस भूखण्ड की अनेकों परम्पराऍं, रीति – रिवाज, धार्मिक एवं सामाजिक मान्यताएं जीवन का प्रकार एवं पद्धति, जीवन दर्शन एवं चिन्तन अपनी मूलभूत व्यक्तिकता लिए हुए है। इस दृष्टि से भी इस क्षेत्र का अध्ययन प्रांसगिक हो जाता है।[1]

सांभर के दक्षिण में नलियासर की खुदाई में मिले कई बहुमूल्य सिक्के, पात्र व मूर्तियॉ जयपुर स्थित राजकीय संग्रहालय में देखी जा सकती है। जयपुर के डॉ. टी. एच. हैन्डली के आदेशानुसार वहॉ खुदाई करने पर पुरातत्व संबंधी अनेक वस्तुएं मिली थीं जो तब जयपुर राज्य के अजायबघर में रखी गयी थी। इसमें मंदिरों के शिखर, पकाई हुयी मिट्टी की मनुष्यों और जानवरों की मूर्तियॉ, तॉबे के सिक्के व अन्य सामग्री भी थी। इसमें प्राप्त पुरातत्व सामग्री के आधार पर सन् 1936 – 38 और 1938 – 39 में तत्कालीन निदेशक, पुरातत्व विभाग, श्री दयाराम साहनी ने इस स्थान को बहुत प्राचीन बताया उनके अनुसार चौहानों के राजवंश की उत्पत्ति से पूर्व अर्थात् ईसा के कुछ शताब्दियों पूर्व और बाद तक नलियासर की सभ्यता पनपी थी। खुदाई में तीसरी व चौथी ईसा पूर्व सदी के मोहनजोदड़ो व हड़प्पा के समकक्ष सभ्यता होने के अवशेष भी मिल चुके हैं।

यह सर्वविदित है कि ईसा के इर्दगिर्द शताब्दियों में आबादी नदी घाटियों और जल के स्थानों के समीप ही बढ़ने और बसने लगी थी यह प्रसिद्ध फ्रांसिसी भूगोलवेत्ता ब्लाश के कथन को स्पष्ट करती है–

"Humanity did not spread like a sheet of oil, but it grew in clumps like corals" Blache.[2]

यहॉ से मिली पकाई हुयी मिट्टी की मूर्तियों में से एक ऐसी मूर्ति है जिसका एक बड़ा सिर और छः सिरे छोटे है तथा यक्षस्तम्भ भी बना है। उनके नीचे ईस्वी सन् पूर्व की दूसरी शताब्दी के आसपास की लिपि में '' इंद्रसमय'' ''इन्द्रशर्मण '' लेख है। इससे यह निश्चित है कि मूर्तियॉ आदि ब्राह्मण वैदिक धर्म से संबंध रखती है। यहॉ दसवीं शताब्दी का बना एक वैष्णव मंदिर है। यहॉ से कलात्मक दृष्टि से महत्वपूर्ण काले पत्थर की अनेक सुन्दर मूर्तियॉ भी मिली है जिनमें अधिकतर विष्णु की है। वामन व शिव की मूर्तियॉ भी मिली है। सांभर क्षेत्र में ऐतिहासिक महत्व के पुराने सिक्के भी मिले हैं। सन् 1930 – 31 में खुदाई होने पर प्रतिहार नरेश भोजदेव की मुद्राऍं मिली थीं। भोजराज की विक्रम संवत् 900 – 936 तक की प्रशस्तियॉ मिली है। इन मुद्राओं पर एक नर वराह की मूर्ति बनी है और दूसरी तरफ श्री वदादि वराह लिखा है। इससे पता चलता है कि दसवीं शताब्दी के आंरभ में सांभर में प्रतिहारों की मुद्रा का प्रचार भी था।

इससे अनुमान होता है कि नलियासर कुषाणों व गुप्तों के शासन काल में एक विकसित स्थल था। यहॉ भू गर्भ से प्राप्त प्राचीन सिक्कों, बर्तनों अनेक कलात्मक वस्तुओं और खण्डहरों से जहॉ कुषाणकालीन सभ्यता एवं सांस्कृतिक पहलु उजागर होते हैं।[3]

वर्तमान कस्बे के समीप नलियासर में प्राचीन सभ्यता एवं संस्कृति के आज भी साक्षात् दर्शन किये जा सकते हैं। वहीं इस स्थल की प्राचीनता संबंधी तथ्यों का प्रामाणिकरण होता है। नगर योजना वैज्ञानिक रीति से बनाई गयी थी। गलियॉ सीधी थीं और भवन तरतीब से बने हुए थे । भवन बहुमंजिला थे यहॉ मिट्टी के कलात्मक बर्तन, मूर्तियॉ तथा खिलौने आदि बनते थे। शिव, यम, उमा, महेश्वर, दुर्गा एवं यक्ष मूर्तियॉ बड़ी संख्या में प्राप्त हुयी है। कुछ शक मूर्तियॉ भी प्राप्त हुयी है जिनमें पूँछ कटा बंदर, अश्व, लड़ते हुये शेर एवं हाथी शामिल है। सफेद रंग के पात्र भी प्राप्त हुए हैं। यहॉ पर एक बड़े टीले का उत्खनन किया गया जो 2000 फीट 2800 फीट के लगभग का था।

निवास स्थान –

उत्खनन के अन्तर्गत कई खाईयॉ खोदी गई जिसमें 45 धरों के ढाचें प्रकाश में आए। इन मकानों का स्वरूप खुले ऑगन तथा

तीन चार कमरों को लिये हुये देखा गया। मकानों, दरवाजों, खिड़कियॉ और रोशनदानों के निर्माण में पकी हुई ईटें तथा मिट्टी काम में ली गई थी। नावों में झझरे पत्थर का प्रयोग किया गया था। दीवारों तथा फर्शों को मोरंडी मिट्टी से पोता जाता था। छतों को भट्टे में पकाए गये कवेलुओं से ढका जाता था। सीधे रास्ते व गलियों के दोनों ओर करीने से बने मकानों और मकानों के बीच गन्दे पानी आदि के लिए छोड़ी गई सकड़ी नलियों से स्पष्ट होता है कि उस समय के लोगों को नगर नियोजन का पूरा ज्ञान था।

मृन्मय भाण्ड –

मृन्मय भाण्ड में धड़े, कटोरे, सुराहियॉ, थालियॉ आदि है जिनमें कुछ ऐसे हैं जिन पर पौराणिक गाथाओं का अलंकरण है कुछ ऐसे बर्तन हैं जिन पर बेलबूटे हैं और उनकी सतह काफी चिकनी है यहॉ से कुछ आभूषणों के रखने की डिब्बियॉ भी मिली है जो पकाकर मजबूत बना दी गयी थीं। सीप और शंखों का प्रयोग भी आभूषणों व अंलकरणों में यहॉ किया जाता था जैसा की कई अवशेषों से प्रामाणिक होता है।

पुरातत्व महत्व की इस सामग्री से अन्य बातों के साथ – साथ तात्कालीन सभ्यता, सामाजिक जीवन, कला – कौशल, धार्मिक आचार विचार और राग रंग तथा रीति – रिवाजों आदि के संबंध में जानकारी मिलती है।[4]

मृन्मय मूर्तियॉ–

भवन निर्माण के अलावा यहॉ बेल बूटेदार कलात्मक बर्तन, पक्की मिट्टी से बना सजावटी सामान, पत्थर का काटकर पालिश की गई वस्तुऍ तथा सांचे में ढले उपादान एवं प्रतिमाऍ भी मिली है। यहॉ पक्की हुई पट्टियों के अवशेष भी मिले हैं जिन पर यक्ष – यक्षिनियों, दुर्गा, महेश, भैरव, अर्धपुरूष – गन्धर्व, पुरूष – स्त्रियॉ, जानवर तथा पक्षियों की मूर्तियॉ बनी हुई है जो कला की दृष्टि से बड़ी रोचक है। यहॉ प्राप्त इन वस्तुओं से उस समय के लोगों की पोषाक आभूषण, खान – पान, धर्म, व्यवसाय तथा सांस्कृतिक जीवन के विभिन्न पहलुओं की जानकारी मिलती है।

देवी –

देवताओं, पशुओं तथा स्त्री पुरूषों को नाचने गाते व वाद्य यंत्र बजाते विभिन्न मुद्राओं के अतिरिक्त दीवारों पर लगाने वाले अन्य सजावटी सामान से पता चलता है कि उस समय के सामाजिक जीवन में जहॉ उद्यम, परिश्रम एवं कला का प्रमुख स्थान था वहीं ये लोग मनोरंजन का भी आवश्यक मानते थे। सफेद मिट्टी से बने इस कलात्मक साज समान से स्पष्ट होता है कि उस समय के लोग कलाकारी में भी बड़े सिद्ध हस्त थे। कई वस्तुऍ तो ऐसी है जिन्हें सांचे में ढालकर पकाने से पहले जोड़ा गया है। खण्डहरों में लोहागिरी के औजार, भट्टी तथा मिट्टी के सामान को पकाने के लिए हाव के अवशेष मिले हैं।[5]

नलियासर की खुदाई में देवी – देवताओं की प्रतिमाऍ भी मिली है। इनमें एक प्रतिमा शिवजी की है जिसके हाथ में त्रिशूल व डमरू तथा गले में सर्पमाला है। दूसरी प्रतिमा यम की है जो भैंसे पर सवार है तो तीसरी प्रतिमा सूर्य की है जो रथ में आरूढ़ है। ये प्रतिमाऍ मथुरा में उपलब्ध कुषाण कालीन प्रतिमाओं से हुबहू मिलती हैं। इन प्रतिमाओं से उस समय की धार्मिक भावना परिलक्षित होती है। इसी प्रकार यहॉ स्त्री पुरूषों के आभूषण भी प्राप्त हुये हैं। इनमें सोने के कम तथा तांबे के लोहे से बने आभूषण अधिक हैं। इससे यहॉ के निवासियों की आर्थिक स्थिति का पता चलता है।

धातु के उपकरण–

यहाँ धातुओं से बनी हुयी कई वस्तुएँ मिली है जिनमें लोहे व ताँबें की वस्तुएँ प्रमुख है। चाकू, छुरें, कीलियों, दरवाजों के अटकन, कून्दें, चूलियाँ आदि भी लोह के उपकरणों में प्रमुख है। ताँबें की थालियाँ, चम्मच और आभूषण भी यहाँ के घरों से उपलब्ध हुयें है। पीतल व सीप का प्रयोग भी आभूषणों के लिए यहाँ किया जाता है जैसा की यहाँ से प्राप्त वस्तुओं से स्पष्ट है सोनें, चांदी तथा ताँबें के सिक्कें भी यहाँ से मिलें है।

इस स्थान पर प्राप्त गुंप्तकालीन, कुषाणकालीन सम्राटों के सिक्कें और काबूल के राजा ट्रोमेदीन के सिक्कों से स्पष्ट होता है कि यहाँ व्यापारिक व राजनैतिक दृष्टि से किस सीमा तक प्रगति हो चुकी है।

निष्कर्षतः नलियासर की खुदाई में मिले भग्नावशेषों तथा अन्य सामग्री के अध्ययन विश्लेषण से पुरातत्ववेत्ता इस निष्कर्ष पर

पहुँचे है कि नलियासर की सभ्यता कुषाण सभ्यता की समकालीन है।

विद्वानों की राय है कि ईसा के बाद तीसरी चौथी शताब्दी के समीप झील सूख गई या खारी हो गई जिसके कारण नलियासर सभ्यता का अन्त हो गया।

शाकम्भर की पराकाष्ठा–('600 ई0 से 1556 ई0 तक)

कई शताब्दियों तक यह क्षेत्र वीरान पड़ा रहा और चारों ओर जंगल दिखाई देने लगा। इसलियें इसके समीपस्थ के क्षेत्र को जंगल देश के नाम से पुकारा जाने लगा और यह क्षेत्र सपाददक्ष कहलाने लगा था। प्रबन्धकोष, जयनक रचित, पृथ्वीराज विजय और बिजोलिया शिलालेख के अनुसार सपाददक्ष के प्रथम चौहान (तत्कालीन चौहान) नरेश वासुदेव ने 608 विक्रमी अनन्तर वर्तमान साँभर के स्थान पर अपनी राजधानी की नींव डाली जो शाकम्भर के नाम से विख्यात रही तथा उस पर शासन करने वाले नरेश शाकम्भरी राव कहलाने लगे।

बिजोलिया शिलालेख में उद्धत– '' शकभ राजनि जनीव तूतोपिविष्णों '' वाक्य इसकी व्याख्या करता है कि शाकम्भर के नरेशों की मातृदेवी शाकम्भरी का स्थान आज भी साँभर झील के मध्य एक प्राकृतिक पूल से जुड़ा हुआ है।[6]

यह साँभर से 20 कि0मी0 ठीक पश्चिम में पहाड़ी श्रेणी की तलहटी पर स्थित है जिसका प्रक्षालन मानसून काल में झील का विस्तृत पानी करता है वासुदेव के समय से ही शाकम्भर की उन्नति प्रारम्भ हुई। नरदेव चौहान के शासन के समय नागौर का क्षेत्र भी सपालदक्ष के अन्तर्गत सम्मिलित कर लिया गया और इस प्रकार शाकम्भर का आर्थिक राजनैतिक और सांस्कृतिक वैभव बढ़ा।

तारीख ए–फरिश्ता के अनुसार– चौहान शासक विग्रहराज द्वितीय ने चौहानों की राजधानी की चारों ओर से रक्षा की और महमूद गजनवी जैसे महान सेनानायकों के विरूद्व लड़ाई के लिए सेनाएँ भेजी। इसके बाद शाकम्भर की वृद्वि की गति मन्द पड़ गई। किन्तु पुनः दुर्लभ राय के समय में जो शकराय **शिलालेख के अनुसार–** महाराजधिराज कहलाता था, शाकम्भर उन्नति की ओर बढ़ा।

दुर्लभराय द्वितीय के समय बिजोलिया शिलालेख के अनुसार– शाकम्भरी रावों की सीमा रेखा खम्भात तक पहुँच चुकी थी, जिससे समुद्री मार्ग के द्वारा विदेशों से व्यापार तक होने लगा था शाकम्भर की राजनैतिक, आर्थिक और व्यापारिक पराकाष्ठा इसी समय में हुई और यह एक धनी आबादी का नगर बन गया यहाँ पर बहुमूल्य वस्तुओं का व्रूज्ञपार भी होने लगा। इस शहर में गगनचुम्बी अट्टालिकायें, दुर्ग, प्रासाद आदि परिलक्षित होते थे। बाजार में कपूर के चूर्ण के प्रयोग से सारा वातावरण अद्वितीय सुगंध से परिपूर्ण हो जाता था। यह परिपाटी और जनजीवन की झाकियाँ आगे चलकर पृथ्वीराज विजय और हेमचन्द्र सूरि के 'प्रबंध प्रभाव' के चरित्र के अनुसार अजमेर में प्रचलित रही।[7]

दुर्लभराय द्वितीय और दुर्लभराय तृतीय के बीच चार शासक हुए जिनके समय शाकम्भर की अवनति हुई, क्योंकि उस समय मुगलों के गुजरात के चालुक्यों और पड़ौसी राज्यों के शत्रुओं के साथ निरन्तर लड़ाई लड़ने से सारा कोष प्रायः खाली हो गया था और शाकम्भर की विशेष उन्नति नही हो पाई। तदुपरान्त पृथ्वीराज प्रथम तक जो विग्रहराज तृतीय का पुत्र था शाकम्भर की समुन्नति जारी रही।[8] पृथ्वीराज का पुत्र अजयराज साँभर पर मुगलों के निरन्तर आक्रमणों, चालुक्यों के आक्रमणों तथा पड़ौसी राज्यों की विस्तारवादी नीतियों के फलस्वरूप अपनी राजधानी इस कम सुरक्षित और सर्वविदित स्थान से हटाकर अजमेर साम्राज्य पर पृथ्वीराज रासों के नायक तृतीय पृथ्वीराज चौहान, चौहान वंश के 31वें और अन्तिम शासक तक राजधानी रही। इस काल में साँभर का गौरव विग्रहराज चतुर्थ के स्वर्णयुग के अलावा नही बढ़ सका। पृथ्वीराज तृतीय ने वृहत किलें, बावड़ी, और तालाबों का निर्माण करवाया था। जिसके अवशेष अब भी मौजूद है। उसके समय में साँभर की पुनः कुछ प्रगति हुई थी किन्तु मोहम्मद गोरी के हाथों उसकी 1192 ई0 में तराईन के मैदान में हार होने से सम्पूर्ण नगर धूलि धूसरित हो गया। और इसके उत्तराधिकारी हरिराज, जो अजमेर में शासन करता था, के साथ ही साथ वैशाख बदी 8 वि0सं0 1251 में सपादलक्ष के चौहानों और शाकम्भर दोनों का प्रायः अन्त हो गया।[9]

साँभर झील का नमक प्रथम चौहान शासक के समय से ही राजस्व का एक स्त्रोत रहा है और उसी कारण साँभर कस्बें की वृद्वि हो रही है बनजारें और साँभर का एक परिवार तत्कालीन नमक के व्यापारियों की अपने आप को सन्तति मानते है। इनके

कथानुसार झील से करीब 1400 वर्षों पूर्व से नमक निकाला जा रहा है। साँभर झील के पूर्वी क्षेत्र में दादूदयाल की छतरी भी इस बात का द्योतक है कि दादूदयाल के समय से ही इस झील का उपयोग नमक के लिए किया जा रहा है क्योंकि दादूदयाल के समय भी इसमें नमक युक्त पानी उपलब्ध था।[10]

वर्तमान में भी नमक के कारण ही यह न केवल भारत वरन् विश्व में जाना जाता है। चौहान राज्य की पराकाष्ठा के समय साँभर का सिक्का दिल्ली से लेकर कच्छ तक चलता था। यह उत्तरी भारत की एक राजधानी बन गयी थी उस समय निश्चय ही इसके वैभव की पराकाष्ठा रही होगी। रणथम्भौर का किला, अजमेर का अढ़ाई दिन का झोंपड़ा, आनासागर आदि आज भी शाकम्भरी के चौहानों की शौर्य और सृजनात्मक गाथा का गुणानुवाद करते हैं।[11]

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. गुप्ता, मोहनलाल, जयपुर संभाग का जिलेवार सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक अध्ययन, राजस्थान ग्रन्थागार, 2004, पृष्ठ संख्या – 145
2. रामेश्वर पुरोहित, राजस्थान का हड़प्पा सांभर, स्मारिका, पृष्ठ संख्या – 27
3. शर्मा, गोपीनाथ, राजस्थान के इतिहास के स्त्रोत – 1, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, 1973, पृष्ठ संख्या – 16 –17
4. व्यास, रामेश्वरलाल, सांभर, शाकम्भरी देवी का उद्‌भव एवं महिमा, स्मारिका, पृष्ठ संख्या – 33
5. शर्मा, आभा, सांभर गौरव, नागरिक विकास समिति, सांभरलेक, पृष्ठ संख्या – 11
6. श्रीमाली, गोविन्द लाल, राजस्थान के अभिलेख (मारवाड़ के सन्दर्भ में प्रथम भाग), महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश, जोधपुर, पृष्ठ संख्या – 63
7. शर्मा, चन्द्रशेखर, सुर्जनचरितमहाकाव्यम्, चतुर्थ सर्ग, वाराणसी, पृष्ठ संख्या – 38
8. ओझा, गौरीशंकर हीराचन्द एवं गुलेरी, पं. चन्द्रधर शर्मा, पृथ्वीराजविजयम्, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 1941, पृष्ठ संख्या – 94
9. भार्गव, वी.एस., राजस्थान का इतिहास, कॉलेज बुक डिपो, जयपुर, संस्करण – 1976, पृष्ठ संख्या – 54
10. शर्मा, सागरमल, राजस्थान के संत, शेखावटी शोध प्रतिष्ठान, चिड़ावा, 1997, पृष्ठ संख्या – 46
11. शर्मा, पुष्करदत्त, सांभरलेक, सांभर शामलात (एक ऐतिहासिक अवलोकन), पृष्ठ संख्या – 27